Vol. 5, Issue-1 (January 2016) pp. 18-21 Sangeet Galaxy
ISSN: 2319-9695

कुमाऊँ के शास्त्रीय होली गीत

डॉ.पंकज उप्रेती
एसि0 प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष संगीत
रा0स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बेरीनाग, (पिथौरागढ़) उत्तराखण्ड
Email- editorpighaltahimalay@gmail.com
Website- www.pighaltahimalay.com

होली का पर्व वस्तुतः हर्ष, उल्लास और ऋतु परिवर्तन का ही पर्व है जो भारत के अलावा कई अन्य देशों में भी मनाया जाता है। उल्लास और मनोरंजन को जन सामान्य होलिका और प्रहलाद के प्रसंग से जोड़कर देखता है, किन्तु होली त्यौहार में मनोविनोद, गीत–संगीत, मिलना, रंग खेलना एक पक्ष है और होलिका दहन दूसरा। उमंग और मनोरंजन के इस त्यौहार की अपनी आंचलिकता भी है। जो इसके संगीत में प्रकट होती है। कुमाऊँ में होली की दीर्घ परम्परा है और यहाँ होली गीत गायन के दो प्रकार हैं– खड़ी होली और बैठकी होली। खड़ी होली ग्रामीण अंचल की ठेठ सामुहिक अभिव्यक्ति है, जबकि बैठकी होली को नागर होली भी कहा जाता है।[1] बैठकी होली शास्त्रीय संगीत की बैठकों की तरह होते हुए भी लोकमानस से इस प्रकार जुड़ी हैं कि उस महफिल में बैठा हुआ प्रत्येक व्यक्ति उसमें अपने को कलाकार/गायक मानता है। यानी कि मंच और दर्शक/श्रोता के बीच कोई दूरी नहीं होती है। विभिन्न रागों से सजी होली बैठकी की इस परम्परा में अनगिनत गीत हैं जिन्हें श्रुतियों से पीढ़ी दर पीढ़ी गाया जा रहा है।

भारतवर्ष के होली पर्व में ब्रज की होली का जो निराला रूप है, उसमें उत्तराखण्ड के कुमाऊँ अंचल की होली का स्वरूप भी कम नहीं है। कुमाऊँ में इस उत्सव की शुरुआत कब हुई यह तय कर पाना कठिन है किन्तु अनुमानतः मध्यकाल में दसवीं–ग्यारहवीं सदी से इसका प्रारम्भ माना जाता है। गढ़वाल अंचल के टिहरी व श्रीनगर शहर में कुमाऊँ के लोगों की बसासत और राजदरवार के होने से होली का वर्णन मौलाराम की कविताओं में आता है।[2] इस काल में मैदानी क्षेत्र से भिन्न–भिन्न मानव समुदायों का आगमन यहाँ हुआ, जो अपने साथ विरासत में अपनी संस्कृति भी लाये तथा उसका चलन प्रारम्भ किया। जब एक स्थान से कोई संस्कृति दूसरे स्थान पर जाती है तो वह धीरे–धीरे वहाँ की विशेषताओं को भी अपने में समेटते हुए वहाँ की हो जाती है। कुमाऊँ की होली में भी ऐसा जा सकता है।

कहते हैं 16वीं सदी में कुमाऊँ में होली गायन की परम्परा का आरम्भ राजा कल्याण चंद के समय में हुआ। कुमाऊँ नरेश उद्योतचन्द ने 1697 में 'दशहरे का भवन' अपने महल में बनवाया, उसमें दशहरे के दिन राजसभा होती थी।[3] चंद राजाओं, कत्यूरियों, मणकोटियों, पंवार वंशीय राजाओं तथा अन्य राजघरानों के बीच आपसी सम्बन्ध कैसे ही रहे हों, कलाकारों का सम्बन्ध काफी घनिष्ठ रहा है। राजशाही के जमाने में कई संगीत मर्मज्ञ यहाँ आए और कई जिज्ञासु ज्ञान अर्जित करने के उद्देश्य से बाहर गये।[4] चन्द राज्यकाल में राजा प्रद्युमन शाह ने रामपुर के दरवारी संगीतज्ञ अमानत हुसैन को अपने यहाँ बुलाया। प्रद्युमन शाह को गोरखा आक्रमण से पूर्व सन् 1778 के लगभग हरदेव जोशी ने अल्मोड़ा के राजसिंहासन पर बिठाया था। होली गीत से भी राजा के संगीत प्रेमी होने की पुष्टि होती है– *''तुम राजा प्रद्युमन शाह मेरी करो प्रतिपाल। आज होली खेल रहे हैं, सकल सभासद खेल रहे हैं, कर धर सुन्दर थाल री।''* कहते हैं ग्वालियर, मथुरा से भी मुस्लिम संगीतज्ञ यहाँ आते रहे। 1850 से होली की बैठकें नियमित होने लगीं तथा 1870 से वार्षिक समारोह के रूप में मनाया जाने लगा। शास्त्रीय संगीत से उपजी कुमाऊँ की बैठ होली के स्वरूप को बनाने में उस्ताद अमानत हुसैन का नाम सर्वप्रथम आता है।[5]

राजा कल्याण चंद के समय दरवारी गायकों के संकेत मिलते हैं। अनुमान लगाया जाता है कि दरभंगा में शासकों से भी कहीं न कहीं सम्बन्ध रहे होंगे। कुमाऊँ और दरभंगा की होली में अनोखा सामंजस्य है। कन्नौज व रामपुर की गायकी का प्रभाव भी इसमें पड़ा। अनामत अली उस्ताद ने होली गायकी को ठुमरी के रूप में सोलह मात्राओं में पिरोया। उस्तादों व पेशेवर गायकों का योगदान इसमें रहा है। मुगल शासक व कलाकारों को भी होली गायकी की यह शैली रिझा गई और वह गा उठे– *''किसी मस्त के आने की आरजू है..... /'*[6] इसी प्रकार की एक रचना है जिसमें लखनऊ के बादशाह और केसरबाग का उल्लेख है। अधिकतर इसे राग काफी में गाया जाता है।[7]

प्राचीन वर्ण व्यवस्था की एक मान्यता के अनुसार रक्षावन्धन, दशहरा, दीपावली व होली में से होली शूद्रों का प्रमुख त्यौहार कहा जाता है किन्तु इस पर्वतांचल में यह उच्च वर्ग का प्रमुख त्यौहार बनकर उभरा। पौष के प्रथम रविवार से विष्णुपदी होली के बाद बसन्त, शिवरात्रि अवसर पर क्रमवार गाते हुए होली के निकट आते–आते अति श्रृंगारिकता इसके गायन–वादन में सुनाई देती है। यहाँ कई गाँवों में होली के साथ–साथ झोड़े–चांचरी लोक नृत्यगीत शैली का चलन भी है।

कुमाऊँ की होली के काव्य स्वरूप को देखने से पता चलता है कि कितने विस्तृत भावन इन रचनाओं में भरे हैं। इसी प्रकार इसका संगीत पक्ष भी शास्त्रीय और गहरा है। पौष के प्रथम रविवार से होली गायन की यहाँ जो परम्परा बन चुकी है, उसकी नींव बहुत सुदृढ़ है। पहाड़ का प्रत्येक कृषक आशु कवि है, गीत के ताजा बोल गाना और फिर उसे विस्मृत कर देना सामान्य बात थी। इसीलिये होली गीतों के रचियताओं का पता नहीं है। कतिपय विद्वानों के बारे में पता चलता है कि इन्होंने रचनाएं रचीं हैं। इनमें सबसे प्रथम तो पं.लोकरत्न पत्न 'गुमानी' का नाम है। इनकी एक रचना जो राग श्यामकल्याण के नाम से अधिकांश सुनाई देती है–

''मुरली नागिन सों, वंशी नागिन सों
कह विधि फाग रचायो, मोहन मन लीनो।।मुरली0
व्रज बांवरो मोसे बांवरी कहत है, अब हम जानी,
बांवरो भयो नन्दलाल।।मोहन0
सूरन के प्रभु गिरिधर नागर, कहत गुमानी
दरस तिहारो पाया।।मोहन[8]

रचनाकार चारु चन्द्र पाण्डे द्वारा भी होली बैठकी के लिये कई रचनाओं को रचा। श्री पाण्डे जी पहाड़ की होली बैठकी के मिजाज से परिचित हैं, सो उन्होंने उसी तरंग की रचनाओं को गुंथा जो काफी लोकप्रिय हैं। उदारहण के लिये–

धमार

1. *झलकत ललित त्रिभंग मधुर श्री रंग, जब धरी रे मुरलिया।*
   फाग मची, डफ झांझ झमक गये, बाजत बीन मृदंग।
   'चारु' कदम तर शोभित नटवर, वारौ कोटी अनंग।।
2. *मनसुख लाओ मृदंग नाचत आई चन्द्रावलि पग बांध घुंघरवा।*
   ताल पखावज बाजन लागे, अरु डफली मुरचंग।
   'चारु' प्रिया संग श्यामसुन्दर पर, बरसाओ नवरंग।।[9]

इसी प्रकार कोटद्वार निवासी श्री महेशानन्द गौड़ की होली रचनाएं बहुत लोकप्रिय हैं। होली गीत गाने वाले अधिकांश को पता भी नहीं है कि वह किसकी लिखी रचना गा रहे है। काफी राग पर गाई जाने वाली एक लोकप्रिय रचना–

सबको मुबारक होली, फागुन ऋतु शुभ अलबेली।
घर–घर अंगना रंग अबीर है, खुशियों की रंगरेली,
तन रंग लो तुम प्रभु के रंग में, रंग लो मन की चोली।।'[9]

होली बैठकी में सर्वाधिक रचनाएं राग काफी में गाई जाती हैं। इनमें भक्तिभाव से लेकर श्रृंगार तक की रचनाएं हैं। उदाहरण के लिये एक रचना–

किन मारी पिचकारी, मैं तो भीज गई सारी।
जाने भिगोई, मोरे सन्मुख लाओ, नाहीं मैं दूंगी गारी।।

होली बैठक में विविध रागों के नाम पर होली गीत गाये जाते हैं किन्तु व्यवहार में ठुमरी की भांति इनमें भी राग की शुद्धता का बन्धन नहीं है। इन गीतों की जो चाल–ढाल इतने वर्षों में बन चुकी है, उसे उसी प्रकार से गाया जाता है। हालांकि काफी, खमाज, देश, भैरवी के स्वरों में स्पष्ट पता चल जाता है कि अमुक–अमुक राग पर आधारित होली गीत गाये जा रहे हैं। अब प्रस्तुत हैं कुछ होली गीत–

पीलू

मद की भरी चली जात गुजरिया।
सौदा करना है कर ले मुसाफिर,
चार दिनों की लारी बजरिया।।

खमाज

आज राधे रानी चली, चली ब्रज नगरी,
ब्रज मण्डल में धूम मची है।
वषन आभूषण सजे सब अंग–अंग पर,
मानो शरद ऋतु चन्द्र चली (री)।

बहार

अब कैसे जोवना बचाओगी गोरी,
फागुन मस्त महीने की होरी।
बरज रही बर जो नहीं माने,
संय्या मांगे जोबना उमरिया की थोरी।

जंगलाकाफी

राधा नन्द कुंवर समझाय रही, होरी खेलो फागुन ऋतु आई रही।
अब की होरिन में घर से न निकसूं, चरनन सीस नवाय रही।

देश

चलो री चलो सखी नीर भरन को, तट जमुना की ओर
अगर–चन्दन को झुलना पड़ो है, रेशम लागी डोर।

बिहाग

बलम तोरे झगड़े में रैन गई
कहाँ गया चन्दा कहाँ गये तारे,
कहाँ तोरी प्रीत की रीत।।

भैरवी

अब तो रहूंगी अनबोली, कैसी खेलाई होरी।
रंग की गगर मोपे सारी ही डारी, भीज गई तन चोली।
सगरो जोवन मोरा झलकन लागो, लाज गई अनमोली।।

परज

तोरी वंसुरिया श्याम, करेजवा चीर गई।
सुध बुध खोई चैन गवायो, जग में हुई बदनाम,
तोरे रंग में रंग दी उमरिया, तोरी हुई घनश्याम।।

बागेश्वरी

अचरा पकड़ रस लीनो,
होरी के दिनन में रंग को छयल मोरा।
अबीर गुलाल मलुंगी वदन में, केशर रंग बरसाऊँ।

सहाना

कहत निषाद सुनो रघुनन्दन,
नाथ न लूं तुमसे उतराई।
नदी और नाव के हम हैं खिवैय्या,
भव सागर के तुम हो तरैय्या।।

इसी प्रकार झिंझोटी, जोगिया सहित अन्य रागों में भी कई होली रचनाएं बैठकों में गायी जाती हैं। इनके गायन का शास्त्रीय अंदाज होते हुए भी लोक का ढंग होता है, जो इसे पृथक शैली का दर्जा देता है। पहाड़ों में शास्त्रीय संगीत के प्रचार–प्रसार में इस होली परम्परा का बहुत बड़ा योगदान है। निर्जन और अति दुर्गम क्षेत्रों तक में रागों के नाम लेकर उसके गायन समय पर आम जन का सजग होना इस बात को सिद्ध करता है।

सन्दर्भ–

1. पुराने समय में जब पहाड़ के गिने–चुने नगरों में सम्पन्न/सक्षम लोगों के वहाँ बैठने का प्रबन्ध किया जाता था और महफिल होती थी, उस बैठकी को ही नागर अर्थात नगर होली कहा जाता था।
2. कुमाऊँ का होली गायन : लोक एवं शास्त्र, डॉ.पंकज उप्रेती, पृष्ठ– 11
3. संगीत सुधा, डॉ.पंकज उप्रेती, पृष्ठ– 105
4. वहीं, पृष्ठ– 105
5. वहीं, पृष्ठ– 106
6. बैठकी होली में यह रचना आज भी सुनाई देती है।
7. ''केशर बाग लगाया, मजा बादशाह ने पाया।
   आस–पास से सोना मंगाया, बीच में तख्त बनाया,
   आ पड़ी पूर्वियों की पल्टन, गोरे ने बिगुल बजाया।'' –कुमाऊँ का होली गायन : लोक एवं शास्त्र, पृष्ठ– 126
8. वही, पृष्ठ– 155
9. चारु चन्द्र पाण्डे 'चारु' लोकभाषा और अपनी रचनाओं के लिये भाषा सम्मान से सम्मानित हैं। हाल निवासी हल्द्वानी–काठगोदाम।
10. कुमाऊँ का होली गायन : लोक एवं शास्त्र, पृष्ठ– 123